P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

वैशेषिक दर्शन में 'अभाव' पदार्थ

प्रवेश मिश्र
रीडर,
संस्कृत विभाग,
बी०आर०डी०बी०डी० स्नाकोत्तर महाविद्यालय,
आश्रम बरहज, देवरिया,
उ०प्र०, भारत

राम बहाल
शोध छात्र
संस्कृत विभाग,
बी०आर०डी०बी०डी० स्नाकोत्तर महाविद्यालय,
आश्रम बरहज, देवरिया,
उ०प्र०, भारत

सारांश

वैशेषिक दर्शन में 'अभाव' को सप्तम् पदार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। यद्यपि सूत्रकार कणाद ने अपने ग्रन्थ में 'अभाव' का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है किन्तु 'अभाव' के चारों भेदों का वर्णन पहली बार वहीं पर मिलता है। शिवादित्य, उदयनाचार्य तथा श्रीधराचार्य ने भी अभाव को उन्हीं चार भेदों में विभक्त किया है–

1. प्रागभाव
2. प्रध्वंसाभाव
3. अत्यन्ताभाव
4. अन्योन्याभाव।

प्रभाकर मीमांसक और वेदान्त दर्शन में 'अभाव' का निषेध हुआ है।

मुख्य शब्द : अभाव, प्रमेय, निःश्रेयस, अनुमान, प्रत्यक्ष, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, त्रैकालिक

प्रस्तावना

'अभाव' वैशेषिक–दर्शन का सातवाँ पदार्थ है। अन्य छः भाव पदार्थ हैं। जबकि यह पदार्थ अभावात्मक है। द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य विशेष और समवाय निरपेक्ष पदार्थ हैं जबकि अभाव पदार्थ सापेक्षता के विचार पर आधारित है। किसी वस्तु का न होना अभाव है। अभाव का अर्थ है किसी वस्तु का किसी विशेष काल में किसी विशेष स्थान में अनुपस्थित। अभाव शून्य से भिन्न है। अभाव को शून्य समझना भ्रामक है। प्रो० हिरियन्ना ने कहा है– अभाव से हमें किसी विशेष स्थान और समय में किसी वस्तु की अनुपस्थिति समझनी चाहिए। अभाव का अर्थ शून्य नहीं है जिसे न्याय–वैशेषिक एक विचार शून्य या मिथ्या धारणा कहकर उपेक्षा करता है।

वैशेषिक दर्शन में 'अभाव' को एक स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है किन्तु अधिकांश विद्वानों की मान्यता यह है कि आरम्भिक काल में वैशेषिक–दर्शन में 'अभाव' को एक पृथक पदार्थ नहीं माना गया था क्योंकि सूत्रकार कणाद ने पदार्थोद्देशपरक सूत्र में केवल छः पदार्थों का ही विवेचन किया है–

''धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेष समवायानां
पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्।।[1]

इससे स्पष्ट है कि आचार्य कणाद स्वतन्त्र रूप में 'अभाव' को पदार्थ नहीं मानते हैं किन्तु वैशेषिक सूत्र में अभाव को प्रमेय के रूप में माना है। आचार्य प्रशस्तपाद ने वैशेषिक सूत्र पर भाष्य लिखते समय अभाव का विस्तृत वर्णन किया है। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'पदार्थधर्मसंग्रह' में अभाव को प्रमाण के रूप में स्वीकार तो किया है किन्तु इसका अन्तर्भाव 'अनुमान–प्रमाण' में करते हैं–

''अभावोऽप्यनुमानम् एव।''[2]

सम्भवतः इसी ग्रन्थ से प्रेरित होकर कालान्तर में 'अभाव' को एक स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में स्वीकार कर लिया गया। उल्लेखनीय है कि अभाव शून्य या असत् से भिन्न है। इसका अर्थ है किसी वस्तु का किसी विशेष समय में किसी विशेष स्थान में अनुपस्थितमात्र।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वैशेषिक ने अभाव को एक स्वतन्त्र पदार्थ क्यों माना? अभाव को एक स्वतंत्र पदार्थ मानने के निमित्त वैशेषिक दर्शन में अनेक तर्क दिए गये हैं–

1. अभाव का ज्ञान प्रत्यक्ष से होता है। जब रात्रि के समय आकाश की ओर देखते हैं तब वहाँ सूर्य का अभाव पाते हैं। सूर्य का आकाश में न रहना रात्रि–काल में उतना ही वास्तविक है जितना रात्रि–काल में चन्द्रमा और तारों का रहना। इस प्रकार अभाव की सत्ता को अस्वीकार करना भ्रामक है। इसीलिए वैशेषिक ने अभाव को एक स्वतन्त्र पदार्थ माना है।

2 .अभाव को पदार्थ मानना पदार्थ के शाब्दिक अर्थ से भी प्रमाणित होता है। पदार्थ (पद+अर्थ) उसे कहा जाता है जिसे हम शब्दों के द्वारा व्यक्त कर सकें। अभाव को शब्दों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए क्लास में हम हाथी का अभाव पाते हैं। इस अभाव को शब्दों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अतः अभाव को एक स्वतन्त्र पदार्थ मानना समीचीन है।

3. अभाव को मानना आवश्यक है। यदि अभाव को नही माना जाय तो संसार की सभी वस्तुएँ नित्य हो जायेंगी। वस्तुओं का नाश असम्भव हो जाएगा। वैशेषिक दर्शन अनित्य वस्तुओं की सत्ता में विश्वास करता है। पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के कार्य–द्रव्य जो परमाणु के संयुक्त होने से बनते है, अनित्य हैं ऐसी अनित्य वस्तुओं की व्याख्या के लिए वैशेषिक ने अभाव को अपनाया है। अभाव के बिना परिवर्तन और वस्तुओं की अनित्यता की व्याख्या करना असम्भव है।

4. वैशेषिक–दर्शन में अभाव को स्वतन्त्र पदार्थ माना गया है क्योंकि वैशेषिक वाह्य सम्बन्ध में विश्वास करता है। दो वस्तुओं के बीच सम्बन्ध का विकास होता है। उसके पूर्व उन दो वस्तुओं के बीच सम्बन्ध का अभाव रहता है। जैसे– वृक्ष एवं पक्षी के संयुक्त होने से एक सम्बन्ध बनता है। इस सम्बन्ध के होने के पूर्व वृक्ष और पक्षी के बीच सम्बन्ध का अभाव मानना आवश्यक है। जो दार्शनिक वाह्य सम्बन्ध में विश्वास करता है उसे किसी न किसी रूप में अभाव को भी मानना पड़ता है। डॉ राधाकृष्णन ने कहा है ''जब हम किसी वस्तु के सम्बन्ध में विचार करते हैं तब वस्तु के भावात्मक पक्ष पर बल देते है और जब हम एक सम्बन्ध की बात करते हैं तो वस्तु के अभावात्मक पक्ष पर बल देते हैं।''

5. वैशेषिक का मोक्ष सम्बन्धी विचार भी अभाव की प्रमाणिकता को सिद्ध करता है। मोक्ष का अर्थ है– दुःखों का पूर्ण अभाव। मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य माना जाता है। यदि अभाव को न माना जाय तो वैशेषिक का मोक्ष विचार काल्पनिक होगा।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'अभाव' एक स्वतन्त्र पदार्थ है।

वैशेषिक–दर्शन में अभाव की केवल वस्तुसत्ता को ही स्वीकार नहीं किया गया है अपितु इस निषेधरूप पदार्थ के भेदों–उपभेदों का भी वर्णन किया गया है।

वैशेषिक सूत्रों में यद्यपि 'अभाव' का पृथक् पदार्थ के रूप में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु अभाव के चार भेदों का वर्णन पहली बार वहीं पर मिलता है। शिवादित्य, उदयनाचार्य तथा श्रीधराचार्य ने भी अभाव को उन्हीं चार भेदों में विभक्त किया है–[3]

1. प्रागभाव
2. प्रध्वंसाभाव
3. अत्यन्ताभाव
4. अन्योन्याभाव

प्रागभाव

उत्पत्ति के पूर्व कार्य का भौतिक कारण में जो अभाव रहता है उसे प्रागभाव कहा जाता है। सूत्रकार कणाद ने प्रागभाव का निरूपण करते हुए कहा है कि क्रिया तथा गुण का व्यवहार न होने से, अपनी उत्पत्ति से पूर्व कार्य असत् ही होता है–

''क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत्''[4]

कोई कार्य अपने निर्धारित कारणों से उत्पन्न होता है। ऐसा नहीं है कि प्रत्येक कार्य किसी भी कारण से उत्पन्न हो जाय। किसी कार्य विशेष को उत्पन्न करने की क्षमता किन्हीं विशेष कारणों में ही होती है। एक कुम्हार मिट्टी से घड़े का निर्माण करता है। घड़े के निर्मित होने से पूर्व मिट्टी में घड़े का अभाव रहता है। यही अभाव प्रागभाव है। यह अभाव अनादि है। मिट्टी में कब से घड़े का अभाव है यह बतलाना असम्भव है। परन्तु इस अभाव का अन्त सम्भव है। वस्तु के निर्मित हो जाने पर यह अभाव नष्ट हो जाता है। जब घड़े का निर्माण हो जाता है तब इस अभाव का अन्त हो जाता है। इसीलिए प्रागभाव को सान्त कहा जाता है।

प्रध्वंसाभाव

प्रध्वंसाभाव का अर्थ है विनाश के बाद किसी चीज का अभाव। सूत्रकार कणाद के अनुसार 'सत् रूप कार्य का असत् हो जाना ही प्रध्वंसाभाव है– ''सदसत्''[5]

उत्पन्न हो जाने पर कार्य सत् है। अपने रूप में विद्यमान घट से जलाहरण आदि कार्य होता है और वह गुण व क्रिया का आधार है, यह व्यवहार उसमें बराबर होता रहता है। ऐसे ही तन्तुओं से वस्त्र बन जाने पर उससे देहादि को ढका जाता है और शीत वर्षा आदि से वस्त्र द्वारा शरीर की रक्षा की जाती है। यह घट पट आदि कार्यों की सत् अवस्था है। घड़ा ऊपर से गिर गया, हाथ से छूट गया, किसी ने पत्थर मार दिया, फूट गया, नष्ट हो गया। जैसे उत्पत्ति से पूर्व असत् होने से घट के क्रियागुणव्यपदेश का अभाव था, वैसी स्थिति अब घट के फूट जाने पर होती है। प्रत्येक कार्य–वस्तु का यही अवसान है। वस्तु के ऐसे अभाव को 'प्रध्वंसाभाव' कहते हैं। प्रध्वंसाभाव सादि है। घड़े का नाश होने पर उसका प्रध्वंसाभाव शुरू होता है परन्तु प्रध्वंसाभाव का कभी अन्त नहीं हो सकता क्योंकि जो घड़ा टूट चुका है उसकी उत्पत्ति फिर कभी नहीं होगी। इसीलिए प्रध्वंसाभाव को आदि और अनन्त कहा गया है।

भावपदार्थ और अभाव पदार्थ के स्वरूप में हम अन्तर पाते हैं। जिस भाव पदार्थ की उत्पत्ति होती है उसका नाश भी आवश्यक है। परन्तु यह बात अभाव पदार्थ के प्रसंग में लागू नहीं होती है। जिस अभाव की उत्पत्ति हो गयी उसका नाश असम्भव है। जो मकान टूट चुका है उसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

''अत्यन्ताभाव''

दो वस्तुओं के सम्बन्ध का अभाव जो भूत, वर्तमान और भविष्य में रहता है, 'अत्यन्ताभाव' कहलाता है। सूत्रकार कणाद के अनुसार 'जो इन तीनों अभावों से भिन्न अभाव है वह अत्यन्ताभाव हैं–

''यच्चान्यदसदतस्तदसत्''[6]

इस सूत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए शंकर मिश्र कहते हैं कि यहाँ दोनो 'असत्' पद 'भाव' को प्रधान मानकर कहे गये हैं। उन दोनों में से एक 'असत्' पद उद्देश्य तथा दूसरा विधेय है, ऐसा होने से उक्त

प्रागभावादि तीनों अभावों से भिन्न जो अभाव है, वह 'अत्यन्ताभाव है। न्यायकन्दलीकार के अनुसार 'सर्वथा अविद्यमान वस्तु का जो निषेध है वही अत्यन्ताभाव है'–

''अत्यन्ताभावो यदसतः प्रतिषेध इति''[7]

उदाहरण के लिए रूप का वायु में अभाव। रूप का वायु में अभाव भूतकाल में था, वर्तमानकाल में भी है, भविष्यत काल में भी होगा। अत्यन्ताभाव को सार्वकालिक, अनादि और अनन्त कहा जाता है।

प्राचीन नैयायिकों ने सामयिक अभाव का वर्णन किया है। ऐसा अभाव जो कुछ ही समय के लिए होता है सामयिक अभाव कहा जाता है। जैसे अभी हमारी जेब में रूपए का न होना सामयिक अभाव है। परन्तु अधिकांश नैयायिक इसे अत्यन्ताभाव से भिन्न नहीं मानते हैं। सामयिक अभाव को अत्यन्ताभाव से पृथक करना भ्रामक है।

''अन्योन्याभाव''

दो या अधिक वस्तुओं में एक का दूसरे में त्रैकालिक अभाव अन्योन्याभाव है। सूत्रकार कणाद अन्योन्याभाव का निरूपण करते हुए कहते हैं कि सत् पदार्थ भी असत् होता है–''सच्चासत्''[8]

एक भूप्रदेश पर घट रखा हुआ है। वह प्रदेश घट से युक्त है। वहाँ यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ घट का अभाव है। परन्तु घट के विद्यमान रहते भी यह कहना सर्वथा युक्त है कि 'भूतल घट नहीं है' और घट भूतल नहीं है। दोनों एक–दूसरे से भिन्न हैं। ऐसे ही घोड़ा गाय नहीं, गाय घोड़ा नहीं। दोनों के विद्यमान रहने पर भी दोनों का अन्योऽन्य से भेद है। यह एक–दूसरे से प्रत्येक वस्तु का भेदरूप अभाव 'अन्योन्याभाव' कहा जाता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव दोनों त्रैकालिक अभाव हैं, दोनों अनादि और अनन्त हैं तथापि दोनों में भेद है और वह यह है कि अत्यन्ताभाव में सम्बन्ध का अभाव होता हैं और अन्योन्याभाव में तादात्म्य का। जैसे आकाश में पुष्प का अभाव, इस उदाहरण में आकाश और पुष्प में सम्बन्ध का अभाव है। पुनः घट पट नहीं है। इसमें घट और पट में तादात्म्य का अभाव है।

इस 'अभाव' पदार्थ का हमारे दैनिक जीवन में अत्यधिक महत्त्व है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अभाव का प्रयोग होता है। जब रात्रिकाल में हम बिस्तर पर सोते हैं तो सोचते हैं कि कमरे में भूत, बाघ, साँप आदि का अभाव है।

अभाव के जितने प्रकार माने गये हैं उनकी कुछ न कुछ उपयोगिता अवश्य है। यदि प्रागभाव को न माना जाये तो सभी चीजें अनादि हो जाएंगी। यदि प्रध्वंसाभाव को न माना जाय तो सभी वस्तुएँ अनन्त हो जाएगी। यदि अन्योन्याभाव को न माना जाया वो सभी वस्तुएँ परस्पर अभिन्न होंगी। यदि अत्यन्त्याभाव न हो तो सभी वस्तुओं का अस्तित्व सब काल में सर्वत्र हो जाएगा।

प्रभाकरमीमांसक और वेदान्त दर्शन में अभाव का निषेध हुआ है।

उद्देश्य

वैशेषिक दर्शन में वर्णित 'अभाव' पदार्थ और उसके भेदों की आलोचनात्मक समीक्षा करना।

निष्कर्ष

इस प्रकार वैशेषिक दर्शन के अनुसार 'अभाव' भी वस्तुतः एक सत् वाह्य पदार्थ है। उसका भी हमें चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है तथा उसके चार प्रकारगत भेद भी हैं। वस्तुतः किसी भी तत्त्व के विश्लेषण में उसका निषेध भी एक महत्त्वपूर्ण पक्ष होता है, चूँकि इसके बिना तो हम उस वस्तु का प्रतिपादन विधिरूप से भी नहीं कर सकते हैं।

अन्य शब्दों में निषेध या अभाव भी सत्य–अन्वेषण की एक रीति है। उपनिषदकारों ने 'नेति–नेति' प्रक्रिया द्वारा ब्रह्म तत्त्व के निरूपण में इसी रीति का प्रवर्तन किया था तथा आधुनिक दार्शनिक बर्गसां, हेगले आदि भी चिन्तन के क्षेत्र में इसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं।[9]

भारत में भी प्रायः सभी दार्शनिकों ने किसी न किसी रूप में 'अभाव' या 'निषेध' के महत्त्व को स्वीकार किया है। किन्तु वैशेषिक दर्शन का वैशिष्ट्य इस तथ्य में है कि उसने भाव की भाँति इसकी भी वस्तुसत्ता, प्रत्यक्षग्राह्यता प्रतिपादित की है तथा उसे सामान्य सार्वजनिक अनुभव के आधार पर सिद्ध भी किया है तथापि भाव और अभाव में एक मौलिक अन्तर यह है कि यद्यपि अभाव भी वस्तुतः सत् है किन्तु उसका ज्ञान 'भावपरतन्त्र' ही होता है। प्रतिषेधरूप अभाव का यह स्वरूप ही है कि जिसका यह प्रतिषेध करता है उसी के अधीन होता है। अतः प्रतिशेध्य के बिना 'अभाव' का ज्ञान असम्भव ही है। भाव और अभाव में यही अन्तर है कि एक (भाव) स्वतन्त्र है और दूसरा (अभाव) परतन्त्र। एक की सत्ता की उसकी अपनी उपलब्धि नियामक है और दूसरे की सत्ता की प्रतियोगी की उपलब्धि नियामक है। 'सत्' अर्थात भाव पदार्थ प्रमाण के द्वारा स्वतन्त्र ही गृहीत होता है किन्तु असत् अर्थात अभाव प्रतियोगी के प्रतिशेध रूप से फलतः प्रतियोगीपरतन्त्र होकर प्रमाण के द्वारा ज्ञात होता है। यदि 'अभाव' की भी स्वतन्त्र उपलब्धि हो तो भाव और अभाव में कोई अन्तर ही नहीं रह जाएगा। अतः वास्तविक सत् तत्त्व होने पर भी भाव एवं अभाव दो भिन्न–भिन्न पक्षों के द्योतक हैं क्योंकि भाव स्वतः गृहीत होता है जबकि अभाव को भाव पर निर्भर होकर ही जाना जा सकता है।

अंत टिप्पणी

1. *वै०सू० 1/1/4 (उदयवीर शास्त्री कृत वैशेषिक सूत्र टीका)*
2. *प्र०पा० भाष्य– पृ० 180*
3. *शशिप्रभा– वैशेषिक दर्शन*
4. *वै०सू० 9/1/1*
5. *वै०सू० 9/1/2*
6. *वै०सू० 9/1/5*
7. *न्यायकन्दली – श्रीधराचार्य*
8. *वै०सू० 9/1/4*
9. *शशिप्रभा– वैशेषिक दर्शन*